LEARN GEETA
तस्मात् योगी भवार्जुन

॥ श्रीहरिः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 5: कर्मसंन्यासयोग

1/3 (श्लोक 1-10), शनिवार, 04 अक्टूबर 2025

विवेचक: गीताव्रती श्रीमती श्रुति जी नायक

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/ONtJOG-H2jI

निष्काम कर्म की श्रेष्ठता

हमारी पुरातन संस्कृति का अनुसरण करते हुए गीता जी की वन्दना, श्री मधुराष्टकम्, सद्गुणों की प्राप्ति की कामना तथा श्री हनुमान चालीसा के पाठ के साथ ही दीप प्रज्वलन करते हुए आज के पावन सत्र का शुभारम्भ हुआ।

अभी तक की यात्रा में आप तीसरे स्तरों में तीन अध्याय सीख चुके हैं। L1 के दो, L2 के चार तथा L3 के तीन ऐसे कुल नौ अध्याय आप अच्छे से पढ़ने लगे होंगे।
स्वधा दीदी तथा हिया दीदी ने सकारात्मक उत्तर दिया।

आपको प्रतिदिन एक अध्याय का पठन करना है। अभी हम पाँचवाँ अध्याय पढ़ रहे हैं। हिया दीदी से अध्याय का नाम पूछा गया तो उन्होंने उसका नाम बताया कर्मसंन्यास योग।

नियति दीदी से चौथे अध्याय का नाम पूछा गया तो उन्होंने बताया ज्ञानकर्मसंन्यास योग।

वृत्ति दीदी से तीसरे अध्याय का नाम पूछा गया तो उन्होंने बताया कर्मयोग।

इन तीनों अध्यायों में कर्म शब्द आता है जिनमें श्रीभगवान् ने कर्म के बारे में विस्तार से बताया है। इसके पहले दूसरा अध्याय था साङ्ख्ययोग जिसमे श्रीभगवान् ने आत्मतत्त्व अथवा तत्त्वज्ञान (परमात्मा का ज्ञान) अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति के साधनों के बारे में बताया है। तीसरे अध्याय में हमने अर्जुन के प्रश्न सुना।

ज्यायसी चेतकर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव।।

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहायसीव मे।
तदेकं वद निश्चित्य में श्रेयोऽहमाप्नुयाम्।।

हे केशव, मेरी बुद्धि मोहवश भ्रमित हो गई है, मुझे कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है आप मुझे बताइए कि मेरे लिए क्या उचित

है? मेरे श्रेय का साधन आप मुझे बताइए। अर्जुन के निवेदन पर श्रीभगवान् ने कर्मयोग के बारे में बताया फिर आगे ज्ञानकर्मसंन्यासयोग के बारे में भी बताया। यहाँ श्रीभगवान् ज्ञान का महत्व बताते हुए कहते हैं-

न हि ज्ञानेन सदृशं, पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः, कालेनात्मनि विन्दति॥

अर्थात् ज्ञान से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है। ज्ञान को हम कैसे प्राप्त करें?

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं।

जो श्रद्धा से कर्म करते हैं उन्हें ज्ञान की प्राप्ति होती है। महान सन्तों के पास जाकर उनके उपदेशों को सुनकर हमें तत्त्व की प्राप्ति होगी। सन्देह आने पर हम उनसे प्रश्न भी पूछ सकते हैं।

तद्विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति तै ज्ञानं, ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

पाँचवें अध्याय में भी अर्जुन प्रश्न पूछ रहे हैं। गीता जी के सम्पूर्ण अट्ठारहवें अध्यायों में कौन सा एक अध्याय महत्वपूर्ण है यह बताना कठिन है। सभी अध्याय महत्वपूर्ण हैं। प्रत्येक अध्याय श्रेष्ठ तथा ज्ञानवर्धक है।
उदाहरणार्थ, गङ्गा नदी पवित्र नदी मानी जाती हैं। गङ्गा में स्नान करके सभी पवित्र हो जाते हैं।

गङ्गा नदी का उद्गम स्थल कहाँ है?
गङ्गोत्री।

गङ्गा नदी कहाँ जाकर गिरती है?
सागर में। (गङ्गा सागर में)

प्रत्येक नदी जाकर सागर से ही मिलती है।
गङ्गोत्री से लेकर गङ्गासागर पहुँचने तक प्रत्येक स्थान पर गङ्गा नदी पवित्र है। इसी प्रकार से गीता जी का प्रत्येक अध्याय भी ऐसा ही पवित्र है। गङ्गा नदी की यात्रा में बीच-बीच में तीर्थ स्थान जैसे काशी, प्रयागराज, हरिद्वार इत्यादि आते हैं।
आज का हमारा अध्याय कर्मसन्यासयोग अर्जुन के प्रश्न से ही प्रारम्भ होता है।

5.1

अर्जुन उवाच सन्न्यासं(ङ्) कर्मणां(ङ्) कृष्ण, पुनर्योगं(ञ्) च शंससि। यच्छ्रेय एतयोरेकं(न्), तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम्॥5.1॥

अर्जुन बोले - हे कृष्ण ! (आप) कर्मों का स्वरूप से त्याग करने की और फिर कर्मयोग की प्रशंसा करते हैं। (अतः) इन दोनों साधनों में जो एक निश्चित रूप से कल्याण कारक हो ,उसको मेरे लिये कहिये।

विवेचन- अर्जुन श्रीभगवान् से पूछ रहे हैं,
"हे कृष्ण! आप कर्मयोग और सन्यास दोनों की ही प्रशंसा करते हो और आप यह भी कहते हो कि ज्ञान से श्रेष्ठ कुछ नहीं है ज्ञान ही सर्वश्रेष्ठ है।

"न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।"

इन दोनों में से एक जिससे मेरा श्रेयस् हो, जिससे मेरी उन्नति हो, वह आप मुझे बताइए।"

बालकों के लिए विशेष होने के कारण सत्र संवादपरक रहा बच्चों से पूछा गया कि यदि आपके समक्ष श्रीभगवान् आते हैं तो

आप क्या पूछोगे?
सेजल दीदी ने कहा
"मैं पूछूँगी कि आपने पृथ्वी कैसे बनाई?

लोकशित भैया ने कहा कि मेरा श्रीभगवान् से प्रश्न रहेगा कि इतने सारे देवी देवता और ब्रह्माण्ड कैसे बनाया?

हमें पता नहीं होता है कि हमारे लिये श्रेयस्कर मार्ग कौन सा होगा? हमें उनसे प्रार्थना करनी चाहिए कि जिससे मेरा श्रेय हो वह मुझे दे दें ताकि मैं उस मार्ग पर चलता रहूँ।

5.2

श्रीभगवानुवाच सन्न्यासः(ख्) कर्मयोगश्च, निःश्रेयसकरावुभौ।
तयोस्तु कर्मसन्न्यासात्, कर्मयोगो विशिष्यते॥5.2॥

श्रीभगवान् बोले - संन्यास (सांख्ययोग) और कर्मयोग दोनों ही कल्याण करने वाले हैं। परन्तु उन दोनों में (भी) कर्मसंन्यास-(सांख्ययोग) से कर्मयोग श्रेष्ठ है।

विवेचन- कर्मसंन्यास और कर्मयोग, ये दोनों ही परम कल्याणकारी हैं। कर्मसंन्यास से कर्मयोग विशेष है। संन्यास अर्थात् त्याग, आसान या सरल नहीं है। कर्मयोग या कर्मसन्यास दोनों ही मार्ग पर चलेंगे तो ही मोक्ष प्राप्ति सम्भव है।

कर्मों का पूर्णतया त्याग नहीं कर सकते। ध्यान, जप, कीर्तन यह तो करना ही है। जब हम संन्यास की बात करते हैं तो उसमें कर्मों का महत्व नहीं होता उसमें बुद्धि का उपयोग अधिक होता है।

दोनों ही साधनों का अन्तिम लक्ष्य परमात्मा की प्राप्ति ही है। रजोगुण कर्म प्रधान होता है।
जिनमें रजोगुण की प्रधानता है,
वे कर्म करते हैं।

बच्चों से प्रश्न किया गया कि रजोगुण से ऊपर कौन सा गुण होता है?
रजोगुण से ऊपर होता है सात्त्वगुण।

रजोगुण से सत्त्वगुण की ओर जाने के लिए भी हमें कर्म करना होगा। कर्मयोग साधना में सुलभ है, सरल है, इसलिए कर्मयोग विशेष है। मक्खन को हम जब गर्म करते हैं तो उससे घी बनता है। मक्खन में जो पानी होता है वह वाष्प बनकर निकल जाता है। मक्खन है रजोगुण और घी है सत्त्वगुण।

हम कर्म अपनी प्रकृति के अनुसार करेंगे यदि हम विद्यार्थी हैं तो विद्या अर्जन करना हमारा कर्म है। सभी को अपने-अपने वर्णश्रम के अनुसार कर्म करना पड़ता है। इसी प्रकार साधना करते हुए वह रजोगुण से सत्त्वगुण की ओर बढ़ सकते हैं। उससे ही हमारा उद्धार या उन्नति हो सकती है, कुछ अलग या विशेष करने की आवश्यकता नहीं है। फिर अपने ज्ञान से हम लोक कल्याण भी कर सकते हैं, धनार्जन भी कर सकते हैं। हमारा उद्देश्य उचित होना चाहिए।

5.3

ज्ञेयः(स्) स नित्यसन्न्यासी, यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति।
निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो, सुखं(म्) बन्धात्प्रमुच्यते॥5.3॥

हे महाबाहो ! जो मनुष्य न (किसी से) द्वेष करता है (और) न (किसी की) आकांक्षा करता है; वह (कर्मयोगी) सदा संन्यासी समझने योग्य है; क्योंकि द्वन्द्वों से रहित (मनुष्य) सुखपूर्वक संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है।

विवेचन- श्रीभगवान् यहाँ अर्जुन को महाबाहो कहकर सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि जो व्यक्ति न किसी से द्वेष रखता है और न ही कोई आकाङ्क्षा रखता है, उन्हें तुम संन्यासी ही मानो।

संन्यासी शब्द सुनते ही हमारे मन में यह विचार आता है कि जो भगवा वस्त्र धारण करते हैं, वे संन्यासी होते हैं। सन्यासी के विचार होते हैं कि वे किसी से भी भौतिक वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा या किसी से कुछ लेने की इच्छा-आकाङ्क्षा नहीं रखते हैं।

जो साधरण मनुष्य भी अपना कर्तव्य-कर्म करते हुए न किसी से द्वेष अथवा कुछ नहीं लेने की इच्छा आकाङ्क्षा रखते हैं तो वे भी संन्यासी ही हैं। वे अपने सारे कर्म श्रीभगवान् को ही अर्पण करते हैं तो वे संन्यासी ही हैं। जिनके मन में किसी के प्रति राग और द्वेष नहीं होता वह आराम से सुख से रह पाते हैं, ऐसे व्यक्ति सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाते हैं।इसे हम उदाहरण से समझते हैं-

विद्यालय की परेड (March past) में आपको लीडर (commander) नहीं बनाया गया और आप परेड नहीं कर रहे हैं। जब आप परेड देखते हैं तथा यह सोचते हैं कि यदि "मुझे लीडर बनाया गया होता तो मैं इससे अच्छी परेड करता या इससे अच्छा निर्देश (command) देता" तो वह जो भाव है वह एक प्रकार का द्वेष का भाव ही है।

कार्य नहीं कर रहे हैं लेकिन मन में वह भाव या विचार है। इससे अच्छा तो यही है कि कार्य करें और उससे आसक्त न रहें। आसक्त का अर्थ हुआ कि यह कार्य मैंने किया मुझे इसका अच्छा परिणाम मिलना चाहिए, मेरी प्रशंसा हो- यह भावना।

जो संन्यासी होते हैं उन्हें मान-अपमान से कोई दुःख या प्रसन्नता नहीं होती। जिस प्रकार एक पुल होता है पुल के नीचे एक ओर से पानी आता है व दूसरी ओर से निकल जाता है। ऐसा तो नहीं होता कि पानी पुल तक आया और वापस पलट कर गुस्सा हो कर वापस नहीं जाता। उसी प्रकार संन्यासी के लिए मान और अपमान समान होते हैं। कोई हमारी प्रशंसा करें तो बहुत अधिक प्रसन्न भी नहीं होना है और कोई हमारा अपमान कर दे अथवा हमें कुछ कह दे तो हमें बहुत समय तक दुःखी भी नहीं होना है।

5.4

साङ्ख्ययोगौ पृथग्बालाः(फ्), प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः(स्) सम्यग्, उभयोर्विन्दते फलम्॥5.4॥

नासमझ लोग सांख्ययोग और कर्मयोग को अलग-अलग (फल वाले) कहते हैं, न कि पण्डितजन; (क्योंकि) (इन दोनों में से) एक साधन में भी अच्छी तरह से (स्थित) मनुष्य दोनों के फलरूप (परमात्मा को) प्राप्त कर लेता है।

विवेचन- साङ्ख्य का अर्थ है ज्ञान एवं योग अर्थात् कर्मयोग, तो इन दोनों को एक साथ बताया गया है।
मूर्ख व्यक्ति ज्ञानयोग एवं कर्मयोग को अलग-अलग समझते हैं परन्तु जो ज्ञानी हैं, वे ऐसा नहीं समझते। ऐसा इसलिए कि चाहे ज्ञानयोग को अपनाओ या फिर कर्मयोग को, इन दोनों का अन्तिम फलरूप क्या है?
वह है परमात्मा की प्राप्ति।

चाहे हम ज्ञानयोग को चुनें या फिर कर्मयोग को, हमारी अन्तिम अपेक्षा होती है कि हमें परमात्मा की प्राप्ति हो। हमें किसी एक में विलीन हो जाने से हमारा कार्य हो जाता है।
साङ्ख्ययोग और कर्मयोग, ये दोनों ही श्रेष्ठ हैं।

हमें यह देखना है कि हमारी प्रकृति के अनुरूप क्या है? यहाँ अर्जुन के सामने कौन सा मार्ग स्थित था?
एक क्षत्रिय होने के कारण युद्ध करना उनका कर्तव्य था तो श्रीभगवान् अर्जुन को कहते हैं-
"तुम युद्ध करो। युद्ध तुम्हारा कर्मयोग है।"

अब एक शिक्षार्थी का सन्दर्भ लेते हैं। एक विद्यार्थी को कोई यह नहीं कहेगा कि तुम संन्यास धारण करो, तप करो आदि क्योंकि विद्यार्थी का परम धर्म, परम कर्तव्य होता है शिक्षा प्राप्त करना। वैसे ही अर्जुन का परम कर्तव्य था कि वे युद्ध करें, वह भी इसलिए कि वे एक क्षत्रिय हैं।

विद्यार्थी विद्या को अर्जित करने में लगा होता है। उसके लिए ध्यान, ज्ञान और चिन्तन, यह सब कुछ समानान्तर रूप में मिलता रहेगा। जब हम वरिष्ठ बन जाते हैं तब हमें कोई यह नहीं कहेगा कि अब तुम पढ़ाई करो। कुछ बातें समय के अनुसार होती हैं। यह ऐसी स्थिति होती है, जहाँ हमें कर्मों को भूलकर ध्यान की ओर लग जाना होता है।

अभी विद्यार्थी के रूप में हमें क्या करना है?
विद्यार्थी के रूप में हमें सबकुछ भूल कर अपनी पढ़ाई की ओर ध्यान केन्द्रित करना होता है।

यह हमारा कर्म है, इसके साथ ही अपने कर्म को योग में कैसे परिवर्तित करना है?
हम जो कुछ भी पढ़ाई करते हैं, उसे श्रीभगवान् को समर्पित करना है-
"हमने आज जो भी पढ़ा है, वह हम आपको अर्पण करते हैं।"
श्रीभगवान के समक्ष हमें यह प्रार्थना करनी है-
"हे भगवान्! हम जो कुछ भी पढ़ रहे हैं, वह हमें अच्छे से प्राप्त हो जाए।"

श्रीभगवान् यह सबकुछ देख रहे होते हैं। वे हमारे अन्तर्मन में स्थित हैं, वे सदैव हमें देखते हैं पर हम उन्हें नहीं देख पाते। हमें यह विश्वास होना चाहिए कि वे सदा हमारी अन्तरात्मा में स्थित हैं।

5.5

यत्साङ्ख्यैः(फ्) प्राप्यते स्थानं(न्), तद्योगैरपि गम्यते।
एकं(म्) साङ्ख्यं(ञ्) च योगं(ञ्) च, यः(फ्) पश्यति स पश्यति॥5.5॥

सांख्ययोगियों के द्वारा जो तत्त्व प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियों के द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है। (अतः) जो मनुष्य सांख्ययोग और कर्मयोग को (फलरूप में) एक देखता है, वही (ठीक) देखता है।

विवेचन- साङ्ख्ययोगियों के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियों के द्वारा भी वही ज्ञान प्राप्त किया जाता है। ऐसे में जो मनुष्य साङ्ख्ययोग और कर्मयोग को फलरूप में एक मानता है, वही सही ज्ञानी है।

ऐसा देखा जाता है कि कुछ लोग ज्ञानयोग को श्रेष्ठ मानते हैं तो कुछ लोग कर्मयोग को श्रेष्ठ मानते हैं। चाहे ज्ञानयोग को अपनाएँ या फिर कर्मयोग को, यहाँ इसका अन्तिम गन्तव्य तो परमात्मा की प्राप्ति ही है। ऐसा समझ कर चलने वाला मनुष्य ज्ञानी है। यह सब कुछ अपनी-अपनी साधना है, और हमें केवल अपनी साधना करनी है।

अब विश्वपटल पर देखिये, अमेरिका कहाँ है?
नक्शे में हम यदि भारत देश को सामने रखकर देखते हैं तो अमेरिका हमारे बायीं ओर है। हमें अमेरिका जाना है तो हमारे सामने दो विकल्प होते हैं। पृथ्वी गोलाकार होने के कारण, यदि हम अमेरिका बायीं ओर से जाना चाहें तो हमें दुबई, लन्दन के मार्ग से जाना होगा और दाहिनी ओर से जाना चाहें तो हमें कोरिया, जापान के मार्ग से जाना होगा।

अब देखिये! चाहे मार्ग कोई भी हो, हमें जाना कहाँ था? वह है अमेरिका। इसी प्रकार हमें परमात्म-प्राप्ति के लिए चाहे साङ्ख्ययोग का मार्ग अपनाना पड़े या कर्मयोग का, जाता तो वहीं है। साङ्ख्ययोग को अपनाओ या कर्मयोग को, जाना तो परमात्म धाम ही है। इसलिए यही हमारी साधना होनी चहिए।

5.6

सन्यासस्तु महाबाहो, दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म, नचिरेणाधिगच्छति॥5.6॥

परन्तु हे महाबाहो ! कर्मयोग के बिना संन्यास सिद्ध होना कठिन है। मननशील कर्मयोगी शीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- यहाँ श्रीभगवान् कह रहे हैं,
"हे महाबाहो! हे अर्जुन! कर्मयोग के बिना संन्यासयोग सिद्ध होना कठिन है। जो कर्मयोगी निरन्तर कर्मयोग में लिप्त रहता है, वह शीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है।"

श्रीभगवान् ने उन्हें यहाँ पर मुनि के विशेषण से सम्बोधित किया है। समझना है कि ज्ञान श्रेष्ठ है, पर ज्ञान से ही परमात्मा की प्राप्ति नहीं होगी, ज्ञान के साथ-साथ कर्मयोग से हमें परमात्मा की प्राप्ति होगी।

चाहे विद्यार्थी हो या गृहस्थ, अपने कर्मयोग के माध्यम से ही श्रीभगवान् को प्राप्त कर सकते हैं। कर्म करने हैं और श्रीभगवान् को उसे अर्पित करना है। इसके साथ ही पूर्ण समर्पण के साथ हमें अपने कर्म श्रीभगवान् को अर्पित करने हैं, न कि मन में रोष को रखते हुए।

जब कभी त्यौहार होता है तो माँ पूर्ण समर्पण से श्रीभगवान् के लिए बहुत से नैवेद्य बनाती है, जिसमें वह किसी थकान की अनुभूति नहीं करती बल्कि उसमें सन्तुष्टि का भाव होता है। उसमें यह भाव होता है कि आज तो भोग लगाना है। यह सबकुछ श्रीभगवान् का चिन्तन करने के कारण होता है। जब श्रीभगवान् ध्यान में हैं, तो थकान की अनुभूति होती ही नहीं, उसके विपरीत असीम प्रसन्नता का अनुभव होता है।

इसलिए यहाँ कहा गया है कि कर्मयोग के बिना साङ्ख्ययोग सिद्ध नहीं होता। जो भी कर्म करते हैं, उसे श्रद्धा भाव से श्रीभगवान् को अर्पण करना है और जो भी प्रसाद के रूप प्राप्त होता है, स्वीकार करना है। इसी से उस मनुष्य की उन्नति होती है और ज्ञान की प्राप्ति भी होती है। अन्ततः यही कहना होगा की कर्म करना है और इसी के माध्यम से हमें ज्ञान की प्राप्ति होगी।

यहाँ एक अपवाद भी है। बहुत ही कम प्रतिशत ऐसे व्यक्तित्व भी हैं जिन्हें कर्म करने की आवश्यकता नहीं और वे ज्ञानी हैं। कुछ बच्चे बहुत ही अल्प आयु में भी, अक्षरों का ज्ञान न होते हुए भी गीताजी के श्लोक अच्छे से गा लेते हैं।
यह कैसे सम्भव हो सकता है? हो सकता है! पिछले जन्म में उस बच्चे ने गीताजी को आत्मसात् किया हो। उन्हें सिद्धि प्राप्त हो चुकी होती है। थोड़े से ही प्रयत्न से वे सफल हो जाते हैं।

एक सरोवर, जहाँ अमृत प्राप्ति की सम्भावना है किन्तु वहाँ पहुँचने के लिए दो मार्ग हैं- एक बहुत ही कठिन और एक सरल। अमृत प्राप्ति के लिए हम कौन सा रास्ता चुनेंगे? निःसन्देह हम सरल मार्ग ही अपनाएँगे।

जो ज्ञानयोग से परिपूर्ण हैं, उन्हें कठिन अथवा सरल मार्ग से कोई अन्तर नहीं पड़ता क्योंकि वे श्रीभगवान् के बहुत निकट होते हैं। जो श्रीभगवान् को समझ कर कार्य करते हैं, जो सोचते हैं कि श्रीभगवान् ने ही मुझे इस कार्य के लिए चुना है, यह उनकी सच्ची साधना है।

5.7

योगयुक्तो विशुद्धात्मा, विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा, कुर्वन्नपि न लिप्यते॥5.7॥

जिसकी इन्द्रियाँ अपने वश में हैं, जिसका अन्तःकरण निर्मल है, जिसका शरीर अपने वश में है (और) सम्पूर्ण प्राणियों की आत्मा ही जिसकी आत्मा है, (ऐसा) कर्मयोगी (कर्म) करते हुए भी लिप्त नहीं होता।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं,
"विजितात्मा- जिसने आत्मा को अपने वश में किया है, जिसने जितेन्द्रिय- इन्द्रिय को जीत लिया है और विशुद्धात्मा- जिसका अन्तःरण शुद्ध है। समस्त प्राणियों की आत्मा में स्थित उस परमात्मा को वह समझ पाता है। वह कर्मयोगी, कर्म करते हुए भी बन्धन से बन्धते नहीं है। लिप्त का अर्थ है कि उनको वे कर्म चिपकते नहीं है।"

इसका अर्थ है कि वह व्यक्ति जो भी कर्म करता रहता है, उसको ऐसे महसूस नहीं होता है कि यह मैंने किया है, कोई मेरी प्रशंसा करे। मुझे अभी किसी ने कुछ बुरा कहा तो मैं रोता रहूँ। जो भी कार्य हैं, उन सभी में कभी कोई उनका अपमान भी करते हैं, कभी उनको मान भी देते हैं। सबमें वे उसी परमात्मा को देखते हैं। अगर किसी ने मुझे डाँटा तो भी ऐसे लगता है कि श्रीभगवान् ने ही मुझे डाँटा होगा, क्योंकि श्रीभगवान् मुझे अच्छा बना देखना चाहते हैं। मेरे अन्दर और भी कुछ अच्छी बातें होनी चाहिएं। इसके लिए श्रीभगवान् ने मुझे किसी के माध्यम से (through) ऐसे कहा है। ऐसा सोचकर वे आगे बढ़ते जाते हैं। वे कर्म से बन्धते नहीं हैं।

कर्म बन्धन में जब हम फँसते हैं तो क्या होता है? पिछले सत्र में हम लोगों ने देखा कि हम जब कुछ अच्छे कर्म करते हैं तो ऐसा मानिएगा कि उस पुण्य का फल हमें मिलता है। कुछ गलत कार्य करते हैं तो थोड़ा उसका गलत फल भी हमें भुगतना पड़ता है। जब हम उसको श्रीभगवान् को समर्पण करते हैं, कार्य को श्रीभगवान् को समर्पण करते हैं, तब न हमें पुण्य का फल मिलेगा, न हमें पाप का फल मिलेगा, क्योंकि हम सामान्य रूप से पाप तो करते नहीं हैं।

इसके लिए हमारा कुल जमा (balance) क्या होता है? वहाँ एकदम शून्य। इस कारण हम उस बन्धन से बन्धते नहीं हैं क्योंकि हम हमेशा श्रीभगवान् को ही ध्यान में रखकर कार्य करते हैं, आनन्दित रहते हैं। इससे हमें एकदम सन्तुष्टि रहती है। हमें अभ्यास करना है उस स्थिति में पहुँचने का। ऐसे व्यक्ति अन्त में परमात्मा को ही प्राप्त होते हैं।

यहाँ श्रीभगवान् ने कर्मयोगी का लक्षण बताया और आगे के दो श्लोकों में श्रीभगवान् ज्ञानयोगी का लक्षण बताते हैं।

5.8

नैव किञ्चित्करोमीति, युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्, नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्॥5.8॥

तत्त्व को जानने वाला सांख्ययोगी (मैं स्वयं) कुछ भी नहीं करता हूँ' - ऐसा माने (अत:) देखता हुआ, सुनता हुआ, छूता हुआ, सूँघता हुआ, खाता हुआ, चलता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ,

5.9

प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्, नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु, वर्तन्त इति धारयन्॥5.9॥

बोलता हुआ, (मल-मूत्र का) त्याग करता हुआ, ग्रहण करता हुआ, आँखें खोलता हुआ (और) मूँदता हुआ भी सम्पूर्ण इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों में बरत रही हैं' - ऐसा समझे।

विवेचन- यहाँ एक शब्द आया है- तत्ववित् जिसका अर्थ है- तत्वों को जानने वाला साङ्ख्ययोगी। तत्त्वज्ञान का अर्थ है परमात्मा को प्राप्त करने का ज्ञान। उसको बोलते हैं तत्त्वज्ञान और तत्त्ववित् जो इस ज्ञान को जानने वाला है।

पश्य का अर्थ है देखना, हमारी आँख का विषय है देखना।
श्रवण का अर्थ है सुनना,

स्पृशन् अर्थात् स्पर्श (touch),
जिघ्रन अर्थात सूँघना।
अश्नन् अर्थात् भोजन करना,
गच्छन् कहीं भी चलते-फिरते, जाते समय तथा
स्वपन अर्थात् निद्रावस्था,
श्वसन् का अर्थ है श्वास।
प्रलपन् यानी कि बोलना,
विसृजन् का अर्थ है त्याग देना,
गृहणन् अर्थात् स्वीकार करना,
निमिशन्-उन्मिशन् अर्थात् आँख बन्द करते समय भी और खोलते समय भी, जो भी कार्य हमारी इन्द्रियों के द्वारा किए जाते हैं।

सुनना, देखना, बोलना, महसूस करना, सब कुछ हमारी इन्द्रियाँ करती हैं। जो तत्त्ववित् साङ्ख्ययोगी हैं, वे भी ये सब कार्य कर्मयोगी के समान ही करते हैं लेकिन ज्ञानयोगी की उसमें रुचि नहीं रहती है।

मान लीजिये किसी ने साङ्ख्ययोगी के सामने कोई फिल्म लगा दी तो उनको ऐसे नहीं लगता है कि अब मुझे अन्त तक इसको देखना है। किसी ने बीच में बुला लिया तो वे चले जाएँगे, उसमें जुड़ेंगे (attach) नहीं। भले दो मिनट उसको देखा, फिर छोड़ दिया। कुछ सुना और छोड़ दिया। कार्य किया, छोड़ दिया, उसमें वह जुड़ता नहीं है।

उस परिस्थिति में जो भी उनके सामने दिखता है, सुनने को आता है, बोलते हैं, वह उसी समय के लिए सीमित है। वह केवल ज्ञान प्राप्त करते हैं लेकिन इसमें जुडते नहीं।
वे किस भाव से करते हैं?
वह कार्य हेतु इन्द्रिय वर्तन तो कर रहा है, किन्तु धारणा यही रखता है कि "वह कार्य मैं नहीं करता हूँ। मेरा अपना कुछ नहीं है। मैं उसमें जुड़ा नहीं हूँ।"
इस तरह से वह समझते हैं।

5.10

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि, सङ्गं(न्) त्यक्त्वा करोति यः।
लिप्यते न स पापेन, पद्मपत्रमिवाम्भसा॥5.10॥

जो (भक्तियोगी) सम्पूर्ण कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके (और) आसक्ति का त्याग करके (कर्म) करता है, वह जल से कमल के पत्ते की तरह पाप से लिप्त नहीं होता।

विवेचन- यहाँ कर्मयोगी के लक्षणों की कमल के पत्तों के साथ तुलना की गई है।

कमल के पत्ते पानी में रहते हुए भी पानी से नहीं भीगते, पानी उनसे नहीं चिपकता। ऐसे ही कर्मयोगी बन्धनों से लिप्त नहीं होते, क्योंकि वे अपने सम्पूर्ण कर्म परमात्मा को अर्पण करते हैं। उन्हें अपने कर्मों में आसक्ति नहीं होती, वे उनमें आसक्त नहीं होते। वे कर्मों के फलों का भी त्याग कर चुके होते हैं। जो भी आता है वे उसे स्वीकार कर लेते हैं। उनकी कोई अपनी पसन्द नहीं होती है। ऐसा कर्मयोगी, कर्मफल के बन्धन में नहीं बन्धता।

श्रीभगवान् ने अर्जुन को बार-बार यही समझाया है। अर्जुन के माध्यम से श्रीभगवान् हमें यह ज्ञान दे रहे हैं। सभी को यह जानना, समझना चाहिए। कुछ अच्छा कार्य करें, विवेचन सुनें ये सब अच्छी बुद्धि हमें देता कौन है? यह सब कुछ श्रीभगवान् की ही कृपा है, उन्हीं का मार्गदर्शन है। वे हमारे अन्तरात्मा में बैठकर हमारा पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं, हमें सही मार्ग दिखा रहे हैं। इसके लिए हमें श्रीभगवान् का धन्यवाद अर्पण करना है।

हमसे कुछ चूक हो भी जाती है, तब भी हमें श्रीभगवान को क्षमा याचना करनी है। हम क्षमा याचना में उठक-बैठक करते हैं तो यह गलत नहीं है, इससे हमें शक्ति मिलती है, नई ऊर्जा मिलती है और याद रखें कि यह जो क्षमा याचना करते हैं, वह पूर्ण समर्पण भाव से करनी चहिए।

हमें अपने माता-पिता को भी धन्यवाद देना चाहिए, उनके चरण स्पर्श करने चाहियें। इसके साथ ही हमें दूसरों की छोटी-बड़ी सहायता करनी चाहिए। यदि किसी की सहायता नहीं भी कर पाते तो उनके लिए प्रार्थना तो कर ही सकते हैं। ये सभी अच्छे गुण हमें अपने भीतर समाहित करने चाहियें, क्योंकि हम सभी को अच्छे कर्मयोगी बनना है। अपने कर्मों को श्रीभगवान् के चरणों में अर्पित करते हुए आज के अर्थ विवेचन सत्र का समापन हुआ तथा प्रश्नोत्तर सत्र का प्रारम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर

प्रश्नकर्ता- अक्षत भैया
प्रश्न- हमने पहले जन्म में गीता जी पढ़ी और स्मरण भी की। फिर अगले जन्म में हमें कैसे स्मरण में आती है?
उत्तर- पहले जन्म में जो हमने पढ़ा वह अगले जन्म में एक दो बार पढ़ने से ही हमें स्मरण हो जाती है। जैसे आपको हिन्दी प्रिय विषय है अथवा खेलना अच्छा लगता है तो आप उसे शीघ्र ही सीख जाते हो। उसे पढ़ने अथवा खेलने में आनन्द आता है। इसी भान्ति जब आपने पिछले जन्म में गीता जी पढ़ी है तो आपको अगले जन्म में भी गीता जी पढ़ना प्रिय लगता है। आप हृदय से (by heart) उसे पढ़ते हो।

प्रश्नकर्ता- धनुष्या दीदी
प्रश्न- क्या सभी बच्चों को पिछले जन्म का पढ़ा हुआ स्मरण होता है?
उत्तर- नहीं, सबको नहीं। पर कुछ बच्चों को माँ जब सुनाती है तो उन्हें शीघ्र ही स्मरण हो जाता है। बाकी बच्चे भी बार-बार पढ़कर स्मरण कर सकते हैं।

प्रश्नकर्ता- आदि दीदी
प्रश्न- हम बार-बार जन्म क्यों लेते हैं?
उत्तर- जब तक हम श्रीभगवान् को प्राप्त नहीं कर लेते, हमें जन्म मिलता है। परन्तु मनुष्य जन्म बहुत कठिनाई से मिलता है। अन्य प्राणी के रूप में भी हमें जन्म लेना पड़ता है। मनुष्य के रूप में ही यह अवसर (oppertunity) मिलता है कि हम अच्छे कर्म करें। अच्छे इन्सान बनें, झगड़ा न करें, क्रोध न करें।

प्रश्न- ऐसे हमें कितने जन्म लेने पड़ते हैं?
उत्तर- चौरासी लाख योनि कहते हैं। जब तक हमें श्रीभगवान् की प्राप्ति नहीं होती है, हम इन चौरासी लाख योनियों में जन्म लेते रहते हैं। वह चाहे मच्छर के रूप में हो, चीण्टी के रूप में हो अथवा दूसरे पशु (animal) हो सकता है। यह सब ईश्वर की इच्छा से होता है, हमारी इच्छा (choice) से नहीं होता है।
हमें अच्छे कर्म करने हैं क्योंकि हमें श्रीभगवान् के परमधाम में जाना है। यदि श्रीभगवान् ने हमें वो ज्ञान, विवेक, बुद्धि दी है कि अच्छे कर्म करके मुझे प्राप्त कर लो तो हमारा जीवन सार्थक हो जाएगा। जो अपने कर्म मुझे समर्पित करके करता है, जो किसी से द्वेष नहीं रखता है, जो किसी से आकाङ्क्षा नहीं रखता है, वह तो संन्यासी ही है। उसे किसी अन्य संन्यास की आवश्यकता नहीं है। हमें वही कर्मयोगी बनना है।

प्रश्नकर्ता- हिया दीदी
प्रश्न- छठा श्लोक फिर से समझा दीजिए।
उत्तर- अर्जुन ने कहा कि ज्ञानयोग, संन्यासयोग अथवा कर्मसंन्यासयोग, मेरे लिए जो श्रेयस्कर है उसे ही कहिए।
श्री भगवान् ने कहा कि कर्म के बिना संन्यासयोग अत्यन्त कठिन है। अतः तुम पहले कर्मयोग करो। कर्मयोगी बनोगे तो स्वयं ही संन्यास प्राप्त हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता- जिया दीदी
प्रश्न- यदि हम इस जन्म में वही कर रहे हैं जो हमने पिछले जन्म में किया था तो हमें अपना पिछला जन्म याद क्यों नहीं रहता है?
उत्तर- यदि हमें पिछले जन्म का सब कुछ याद रहता तो गड़बड़ हो सकती थी। हमें अपने पिछले जन्म के माता-पिता भी याद रहते, हमें यह भी याद रहता कि हम यहाँ रहते थे, यहाँ जाते थे तो सोचो हम उन माता -पिता के पास जाते या इन माता-पिता के पास जाते। हम पिछले जन्म के सम्बन्धियों से जुड़े (attach) रहते। अतः श्रीभगवान् ने बहुत सोच-समझकर ऐसा बनाया कि हमें पिछले जन्म का कुछ भी याद नहीं रहता है। जो हमारा पिछले जन्म का गुण था, जैसे हम यदि सात्त्विक थे या राजसिक थे, तो वही गुण इस जन्म में भी (carry forward) हमें प्राप्त होता है। यदि हम राजसिक थे तो इस जन्म में हमें सात्त्विक बनना है और यदि सात्त्विक तो तत्व ज्ञान को प्राप्त करना है, श्री भगवान् को प्राप्त करना है। ऐसा हमें लगता है कि हमें पिछले जन्म का याद होना चाहिए परन्तु यह अत्यन्त कठिन (very difficult) है।

प्रश्नकर्ता- सेजल दीदी
प्रश्न- जब अर्जुन के साथ हनुमान जी भी गीता सुन रहे थे तो क्या कुरुक्षेत्र में उन्होंने भी युद्ध किया था?
उत्तर- नहीं, उन्होंने युद्ध नहीं किया था। वे तो ध्वज में विराजमान थे और अर्जुन की सुरक्षा (protect) कर रहे थे।

प्रश्नकर्ता- शरायु दीदी
प्रश्न- चौरासी लाख योनि का क्या अर्थ है?
उत्तर- चौरासी लाख योनि का अर्थ है कि हम उतनी बार प्राणी (creatures) बन कर आएंगे। मनुष्य भी एक प्राणी है। मच्छर, गाय आदि।

प्रश्न- मैने सुना है कि सात जन्म होते हैं।
उत्तर- मनुष्य के रूप में सात जन्म होते हैं।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let's come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||